आतेगाँव

स्थानीय शिक्षा रपट

हाशिए के समुदाय और निष्क्रिय स्कूल

नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्स्ड स्टडीज़
बेंगलूर

हाशिए के समुदाय और निष्क्रिय स्कूल

स्थानीय शिक्षा रपट

खातेगाँव, मध्यप्रदेश

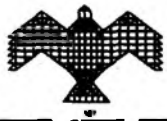

नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्स्ड स्टडीज़

बेंगलूर 560 012

© नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्सड स्टडीज़
2002

प्रकाशन
नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्सड स्टडीज़
नेशनल इन्डीयन इन्स्टीट्यूट ऑफ कैम्पस
बेंगलूर 560 012

रपट की प्रतियाँ निम्नलिखित पता से प्राप्त की जा सकती है।
नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्सड स्टडीज़
नेशनल इन्डीयन इन्स्टीट्यूट ऑफ कैम्पस
बेंगलूर 560 012
दूरभाष : 080-360 4351
ई-मेल : mgp@nias.iisc.ernet.in

ISBN 81-87663-32-4

एन.आइ.ए.एस. विशेष प्रकाशन 9-2002

मुद्रक
वर्बा नेटवर्क सर्वविशेस
193, कोजी अपार्टमेन्टस, 8 मेन, 12 कॉस
मलेश्वरम, बेंगलूर - 560 003
दूरभाष : 334 6692

यह संक्षिप्त रपट बंगलोर की नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ एडवान्स्ड स्टडीज़ की सोश्यालाजी और सोश्यल एन्थ्रापोलाजी इकाई के द्वारा प्राथमिक शिक्षा पर कराए गए अध्ययन का हिस्सा है। फील्ड रिसर्च अक्टूबर 1999 और नवम्बर 2000 के मध्य नीचे लिखे इलाकों में कराई गयी थी– जौनपुर ब्लाक (उत्तरांचल), जयपुर (राजस्थान), खातेगांव ब्लाक (मध्यप्रदेश), बंगलोर (कर्नाटक), तंजावुर (तामिलनाडु) और चिराला (आन्ध्रप्रदेश) । सभी इलाकों की इकट्ठी रपट अलग से दी जाएगी।

स्थानीय शिक्षा की इस रपट का मकसद एक तो यह है कि जिन समुदायों के सदस्यों के साथ यह अध्ययन किया गया था उन्हें इस अध्ययन के निष्कर्षों में भागीदार बनाया जाए और दूसरे, इन्हें ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाया जाए। इसलिए, इस रपट में खासकर शालाओं का और शालाओं की शिक्षा का ब्यौरा है। हमें उम्मीद है कि यह रपट हर इलाके में समुदाय के लोगों को, शिक्षकों को, निर्वाचित जनप्रतिनिधियों को, पालकों को, शिक्षा विभाग के कर्मचारियों को और उन सभी लोगों को उपयोगी लगेगी जो प्राथमिक शिक्षा को आगे बढ़ाने में रुचि रखते हैं।

मध्यप्रदेश के देवास जिले के खातेगांव ब्लाक में फील्ड अध्ययन करने में एकलव्य ने सहायता की है। इलाके में धुलेश्वर राउत फील्ड शोधकर्ता थे। उनकी कड़ी मेहनत और निष्ठा के लिए उन्हें विशेष धन्यवाद। डा.

रामनारायण स्याग और डा. अनवर जाफरी ने फील्ड की शोध का बारीकी से निरीक्षण किया और अंजलि नरोन्हा ने इस शोधकार्य में पहल करके सहायता दी। डा. अर्चना मेहेण्डले और सरिता तुकाराम ने आंकड़ों को और इस रपट को सपुरा करने में सहायता दी और कला सुन्दर ने रपट का सम्पादन किया। इन सब लोगों ने जो रुचि प्रकट की और सहयोग दिया उसके लिए मैं सबको धन्यवाद देती हूं। जिन लागों ने इस अध्ययन में भागीदारी की –पढ़ने वाले बच्चे, बाहर के बच्चे, प्राचार्य, शिक्षक, मातापिता और समुदाय के दूसरे सदस्य–उन सभी को हमें समय देने के लिए, धीरज के लिए और सहयोग के लिए मेरा विशेष धन्चवाद।

इस शोध के लिए नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ एडवान्स्ड स्टडीज़, बंगलोर (एन आइ ए एस) और स्पेन्सर फाउन्डेशन (शिकागो) ने सहयोग दिया था। स्थानीय शिक्षा की रपट को विकसित करने के लिए नई दिल्ली की कनाडियन हाई कमीशन के कनाडियन इन्टरनेशनल डेवलपमेंन्ट ऐजेन्सी (सीडा) ने सहायता दी थी।

मार्च 2002

ए आर वासवी
एन आइ ए एस, बंगलोर

हिन्दी अनुवाद
डा. सुरेश मिश्र, भोपाल

हाशिए के समुदाय और निष्क्रिय स्कूल

"शिक्षा में दम नहीं है"

"आजकल स्कूल बेकार हैं"

"लोग 26 जनवरी के कार्यक्रम में तक नहीं जाते"

"हमारे बच्चे गरीब हैं .....शिक्षक उन्हें भर्ती करने के लिए क्यों आते हैं?"

"सिखाते नहीं, कुछ भी नहीं"

"वे क्यों स्कूल जाते हैं और पढ़ते हैं?

"वे यहाँ इसलिए आते हैं कि सरकार उन्हें मुफ्त में अनाज और चीजें देती हैं"

मध्यप्रदेश के देवास जिले के खातेगाँव ब्लॉक के तीन गाँव में प्राथमिक शिक्षा के बारे में कुछ माता–पिता, बच्चे और शिक्षक ये सोचते हैं। ये शब्द बताते हैं कि माता–पिता स्कूलों को संतोषजनक नहीं मानते, बच्चे इसलिए नाखुश हैं कि स्कूल ठीक से काम नहीं करते और वहाँ पढ़ाने सिखाने का काम नहीं होता, शिक्षक उन नई नीतियों से नाराज हैं जो गरीब बच्चों को और नीची जातियों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। यह स्थिति दोहरे रूप में दुःखद हैं क्योंकि हाल ही में प्रारम्भिक शिक्षा पर जोर दिया गया हैं और इस

क्षेत्र के इतिहास में पहले से ज्यादा बच्चे स्कूल जा रहे हैं। बहुत से लोग अपने बच्चों को शिक्षित करना चाहते हैं और शिक्षा को एक जरूरत मानते हैं। लेकिन विकास खण्ड के स्कूलों में अभी बहुत कुछ करना बाकी है, हालांकि हाल में कई सुधार किए गए हैं जैसे कई बस्तियों में स्कूल निर्मित किए गए हैं, स्कूलों के प्रशासन का विकेन्द्रिकरण किया गया है। स्कूल जाने के लिए कई प्रोत्साहनों की व्यवस्था की गई और कई कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। ऐसी स्थिति इसलिए नहीं पैदा हुई कि लोग सांस्कृतिक रूप से शिक्षा के प्रति उत्सुक नहीं है। बल्कि इसलिए पैदा हुई कि स्कूल प्रणाली ठीक से काम नहीं कर रही है और शिक्षा की अच्छी प्रणाली पाने के अपने अधिकार का दावा करने में असमर्थ हैं। जनता को शिक्षा उपलब्ध कराने की सरकारी कोशिश और लोगों को शिक्षित करने की जरूरत तथा स्कूलों के चलने के तरीके के बीच एक बड़ी खाई है। अंतिम परिणाम होता है स्कूलों में जो हालात है उनके प्रति लोगों में हर तरह की हताशा ।

यह स्थिति इस क्षेत्र के स्कूलों और स्कूली प्रणाली में व्याप्त हो भयानक संकट का चिन्ह है और इसके कारणों को समझने की एकदम जरूरत हैं। यह अध्ययन यह पहचानने पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहा है कि स्कूल के चलने के कितने तरीके हैं और उससे सम्बन्धित समस्याऐं क्या हैं । खातेगाँव विकास खण्ड के बड़ियाली, मोतीपुर और काम्बलीपुर नामक तीन गाँवों को सघन अध्ययन के लिए चुना गया। मोतीपुर विकास खण्ड मुख्यालय खातेगाँव से 26 किमी. दूर है और यहाँ मुख्यतया आदिवासियों की बस्ती है। बड़ियाली खातेगाँव से 26 किमी. दूर है और यहाँ अनुसूचितस जाति के लोगों के पर्याप्त घर हैं। काम्बलीपुर खातेगाँव से 20 किमी. और यहाँ कई जातियों के लोग रहते हैं और पर्याप्त संख्या में अनुसूचित जनजाति के घर यहाँ हैं।

---

1 धुलेश्वर राउत ने अगस्त 1999 से अप्रेल 2000 तक इस क्षेत्र में फील्ड अनुसंधान किया। उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा के बारे में लोगों के मत और अनुभव जानने के लिए अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावलियां और समूह चर्चा का उपयोग किया। उन्होंने तीन गाँव की कक्षाओं का अवलोकन किया और शिक्षकों तथा विकास खण्ड के शिक्षा प्रशासन के सदस्यों का साक्षात्कार भी लिया।

खासतौर से भील, गोंड, और कोरकू। इन गाँव में जो स्थिति है वह एक तरह से पूरे विकास खण्ड की स्थिति का आइना हैं।

खातेगाँव विकास खण्ड : मालवा के पठार के रूप में खातेगाँव और उसके आसपास का हिस्सा मुख्यतः पहाड़ी हैं जहाँ दूर–दूर टोले बस्तियाँ हैं जिनमें से ज्यादातर सभी मौसम में चालू रहने वाली सड़कों से नहीं जुड़े हैं। कुल 171 बस्तियों में से सिर्फ 16 पूरे साल खुली रहने वाली सड़कों से जुड़े हैं। कई बड़े गाँव में खेती योग्य और सिंचित जमीन हैं जो जाट, गुजर, पाटीदार और यादव जैसी खेतीहर जातियों के हैं। ये जातियां पास के राजस्थान, गुजरात, उत्तरप्रदेश और महाराष्ट्र राज्यों की हैं। बलाई, मेहतर और चर्मकार अनुसूचित जाति के वर्ग में आते हैं और ये विकास खण्ड की आबादी का 14.58 प्रतिशत हैं। ये मुख्यतः खेतिहर मजदूर के रूप में काम करते हैं जबकि कुछ के पास थोड़े–थोड़े जमीन है, बढ़ई, कुम्हार और नाई जैसी जातियां भी बड़े गाँव में रहती हैं।

आदिवासियों की संख्या विकास खण्ड की कुल आबादी का 21 प्रतिशत है। अधिकतर आदिवासियों में भील सबसे ज्यादा यानि 47प्रतिशत गोंड 18 प्रतिशत, कोरकू 5 प्रतिशत और कुछ भीलाले हैं। ज्यादातर हिन्दू जातियों के विरुद्ध आदिवासियों के पास बहुत कम सिंचित जमीन है और खेतिहर मजदूर के रूप में काम करते हैं और कई उस इलाके के भू–स्वामियों के पास हाली के रूप में यानि बन्धुआ मजदूरी के रूप में काम करते हैं। बहुत सी जातियों वाले गाँव में आदिवासियों की बस्ती गाँव की सीमा में हैं। पर जंगल की बस्तियों में जहाँ आदिवासियों की संख्या ज्यादा है उनके सीमा में नहीं है।

---

2 विकास खण्ड और जिला के 2001 के सरकारी विवरण से एकलव्य (खातेगाँव केन्द्र) संकलित।
3 वहीं
4 वहीं

ऊँची जातियों के समूहों और आदिवासियों के बीच जो आर्थिक भेद है वैसा ही भेद सामाजिक – सांस्कृतिक भी है। इन समूहों के बीच सामाजिक आदान–प्रदान या तो बहुत कम है या बिल्कुल नहीं है। और हालांकि आदिवासियों को सीधे तौर से अछूत नहीं माना जाता पर उन्हें कुछ मंदिरों में जाने की इजाजत नहीं है। ऊँचे और मध्यम वर्ग के जाति समूह बलाई और चर्मकार जातियों को अछूत मानते हैं। इन जातियों का छूआ भोजन नहीं खाया जाता या तो उसे फेंक दिया जाता है या मवेशियों को दे दिया जाता है। बलाई और चर्मकार जाति के लोगों को मंदिरों में प्रवेश नहीं करने जाता। जैसे ऊँची जाति के शिव मंदिर में। यह भी देखा गया हैं कि नीची कही जाने वाली जातियों के शिक्षकों को समुदाय के बुजुर्गों द्वारा गंदगी और छूआछूत के नियम मानने के लिए बाध्य किया जाता है।

विकास खण्ड में 1991 में साक्षारता का प्रतिशत 38 था। जोकि राज्य के औसत 44.67 प्रतिशत से और जिले के औसत 44.08 प्रतिशत कम है । इनमें से अनुसूचित जाति में साक्षारता का प्रतिशत 30 है और अनुसूचित जनजाति 15 प्रतिशत है। 1991 के बाद 2001 में एक दशक में काफी परिवर्तन हुआ जिले की साक्षरता 61.04 हो गई। जिसमें 76.07 प्रतिशत पुरुष और 44.90 प्रतिशत महिलाएं हैं। जबकि लिंग की यह दरार महत्वपूर्ण है और कायम है। औरतों में पुरुषों की तुलना में साक्षारता की दर बढ़ी है। यह 1991 में 25.57 प्रतिशत थी जबकि 2001 में 44.90 हो गई।

हालांकि हर बस्ती में एक स्कूल स्थापित करने के अभियान के सभी बस्तियों में स्कूल हो गए हैं। यहाँ तक की सुदूर स्थानों में भी एक शिक्षा ग्यारन्टी स्कीम (ईजीएस) स्कूल हो गए हैं, पर शिक्षक और बच्चों के अनुपात स्कूलों में कम है। उदाहरण के लिए औसतन प्रति स्कूल में 2.78 टीचर हैं और शिक्षक

5 जनगणना, 1991। भारत सरकार।

और छात्र–शिक्षक अनुपात 103:1 खातेगाँव विकास खण्ड के हाल के ताजे आँकड़े बताते हैं कि स्कूल जाने की उम्र के सभी बच्चों में 61 प्रतिशत बच्चों के नाम स्कूलों में दर्ज हो चुके हैं। स्कूल छोड़ने की दर 13 प्रतिशत है जिसमें से 18 प्रतिशत अनुसूचित जाति के हैं और 17 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के है। पर स्कूल छोड़ने की सबसे ऊँची दर 40 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियों लड़कियों की हैं। इन आँकड़ों के अलावा जिस बात पर ध्यान देना जरूरी है वह स्कूलों के कामकाज का तरीका और शिक्षा प्रणाली के बारे में लोगों का आंकलन।

विकास खण्ड में साक्षारता की नीची दर और बुनियादी शिक्षा प्रणाली के कामकाज से सम्बन्धित समस्याओं का कारण यह हो सकता है शैक्षिक संस्थाएं बनाने के लिए कोई महत्वपूर्ण सार्वजनिक जोर नहीं है और इलाके का समग्र आर्थिक विकास नीचा है। इन तत्वों में एक बात और जुड़ जाती है कि समाज में आज भी ऊँचे नीचे की भावना है और वह बटा हुआ है। और उसके जाति आधारित रूप में और संसाधनों के वितरण में बहुत कम बदलाव आया है। तीनों गाँवों के हमारे अध्ययन के आधार पर नीचे लिखे मुद्दे पहचाने गए हैं और उस इलाके में बुनियादी शिक्षा संस्थाओं के काम में बाधा पैदा करते हैं।

निष्कर्षों का अवलोकन

स्कूलों की हालत

सरकारी अभिलेख बताते हैं कि विकास खण्ड की सभी 171 बस्तियों में स्कूल हैं पर इस विवरण में स्कूलों की हालत और उनके कामकाज का कोई संकेत

6 वही।

7 विकास खण्ड शिक्षा के आँकड़े, विकास खण्ड शिक्षा कार्यालय, खातेगाँव कार्यालय 2000।

नहीं है और इसका भी संकेत नहीं है कि वहाँ बच्चे सीखरहे हैं या नहीं। हमारे अध्ययन से संकेत मिलता है कि सभी तीनों गाँव में स्कूल अलग–अलग सीमाओं में ठीक से काम नहीं कर रहे है और स्कूलों की हालात सुधारने की बहुत गुंजाइश है। मोतीपुर में पंचायत ने 1978 में मीना समुदाय के व्यक्ति द्वारा दान की हुई एक चौथाई एकड़ की जमीन पर दो कमरों का स्कूल बनवाया था। स्कूल की पाँच कक्षाओं को पढ़ाने के लिए एक ही शिक्षक नियुक्त किया गया और लोगों के अनुसार कई शिक्षक अनियमित रहें और पढ़ानें में रूचि नहीं लेते रहें हैं। बड़ियाली में प्रायमरी स्कूल दो कमरें की इमारत में चल रहा है और एक कमरे में पंचायत कार्यालय है। काम्बलीपुर में 1947 में दो कमरों का स्कूल बनाया और उसके बाद उसकी कोई मरम्मत नहीं हुई। फर्श उखड़ गया है और छत गिरने की करीब है।

ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि स्कूल बिखरे हुए तरीके से चलते है और शिक्षक की सनक और इच्छा रहती है कि वह कक्षा चलाए या स्कूल बंद कर दे। शोधकर्ता धुलेश्वर राउत ने नोट किया कि स्कूल नियमित रूप से नहीं चलते और इनमें शिक्षक और छात्र बहुत ज्यादा गैरहाजिर रहते हैं। कई बार बिना अधिकारीक रूप से बंद रहते हैं और वहाँ पढ़ाने और सीखने का तरीका ठीक नहीं है। स्कूलों का ठीक से काम नहीं करने का एक महत्वपूर्ण संकेत यह है कि दर्ज किए गए बच्चों की संख्या बढ़ाकर बताई जाती है। और इससे स्कूल में हाजिर रहने वाले बच्चों की वास्तविक संख्या का पता नहीं चलता। तीनों गाँवों में शोध कर्ता जब अचानक और बिना बताए पहुँचे तो नीची लिखी बातें सामने आई :

काम्बलीपुर 13 जनवरी 2000

शिक्षक 11.15 बजे आकर स्कूल खोलते है (स्कूल का सरकारी समय 10.30 से 4.30 बजे तक है)। 1.15 बजे तक कक्षाएं चलती हैं और फिर स्कूल भोजन के लिए बंद हो जाता है। भोजन का बाद सत्र 2.30 पर शुरू होता है और 3.30 पर बंद हो जाता है। पढाने में पूरे दिन में सिर्फ 2 घण्टे 45 मिनिट

लगाए। जबकि छात्रों की कुल दर्ज संख्या 189 है सिर्फ 88 छात्र उपस्थित हैं जबकि रजिस्टर में 150 छात्र बताए गए। उपस्थिति वास्तव में 46 प्रतिशत रही। प्रधान शिक्षक और 3 छात्र स्कूल के समय का ज्यादातर हिस्सा राशन की दुकान से गेहूँ प्राप्त करने में लगाते हैं।

15 जनवरी 2000

सिर्फ एक महिला शिक्षक स्कूल आई और उसने 11.25 पर कमरे खोले। 12. 00 बजे दोपहर को सिर्फ 46 छात्र (24 प्रतिशत) उपस्थित हैं। गैर हाजिरी का कारण यह बताया गया कि पिछले दिन मकर संक्राति थी। 12.15 पर महिला शिक्षक प्रधानाध्यापक से स्कूल बंद करने को कहती है। प्रधानाध्यापक मना कर देते हैं लेकिन 1.00 बजे स्कूल बंद कर देते हैं। हालांकि 24 प्रतिशत छात्र ही उपस्थित हैं लेकिन प्रधानाध्यापक रजिस्टर पर लिखते हैं कि 147 छात्र स्कूल में उपस्थित थे।

23 फरवरी 2000

स्कूल 11.20 पर शुरू हुआ और सिर्फ 8 लड़कियां और 25 लड़के हाजिर हैं। याने 17 प्रतिशत बच्चे स्कूल आए हैं 4 में से 2 शिक्षक उपस्थित हैं। छात्रों की संख्या कम बताकर 2.00 बजे दोपहर को स्कूल बंद कर दिया।

24 फरवरी 2000

खातेगाँव से बस नहीं आई इसलिए 3 शिक्षक गैर हाजिर हैं, एक महिला शिक्षक स्कूल के कमरे खोलती हैं और बच्चों के साथ प्रतीक्षा करती है। बच्चे 12.00 बजे दोपहर तक रूकते हैं और फिर चले जाते हैं। इसके बाद स्कूल नीचे लिखे सरकारी कारणों से कई दिनों तक बंद रहता है।

---

25 फरवरी 2000 – मण्डल चुनाव
26 फरवरी 2000 – मण्डल चुनाव
28 फरवरी 2000 – पल्स पोलियो
29 फरवरी 2000 – पल्स पोलियो

जैसा कि यह विवरण फरवरी के एक भाग में स्कूल के कामकाज का तरीका बताता, स्कूल कई कारणों से बंद रहता है और पढ़ाने और सीखने के वास्तविक घण्टे कम से कम रहते हैं। इसमें आश्चर्य नहीं कि स्कूलों का इस प्रकार बिखरा कामकाज ही वह कारण है कि जिसके कारण कई माता–पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजना निरर्थक मानते हैं।

बड़ियाली

बड़ियाली का स्कूल इसी तरह चल रहा है, हालांकि स्कूल राजमार्ग पर है और शिक्षकों को शहर से स्कूल आने–जाने में कोई समस्या नहीं है।

15 नवम्बर 1999

173 बच्चों में से 61 बच्चे (35 प्रतिशत) दर्ज हैं और 4 में से 2 शिक्षक हाजिर हैं प्रधानाध्यापक 131 बच्चों की उपस्थिति दर्ज करता है।

16 नवम्बर 1999

2 शिक्षक अभी भी गैर हाजिर हैं और दर्ज किए गए 173 बच्चों में से सिर्फ 74 बच्चे (42 प्रतिशत) हाजिर हैं। कम दर्ज संख्या के बारे में पूछने पर शिक्षक बताते हैं कि यह फसल कटाई का समय है, इसलिए कई बड़े बच्चों को उनके माता–पिता खेत ले गए हैं।

17 नवम्बर 1999

फिर से सिर्फ 61 बच्चे (35 प्रतिशत) हाजिर हैं लेकिन 126 बच्चे रजिस्टर उपस्थित दिखाए गए।

18 नवम्बर 1999

सिर्फ 52 बच्चे (30 प्रतिशत) उपस्थित हैं लेकिन 119 बच्चे उपस्थित दिखाए गए।

कामकाज के ऐसे तरीके में जिसमें पढ़ाने और सीखने का काम कम हो और शिक्षकों की और छात्रों की गैरहाजिर कम हो उसमें कई माता–पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजना निरर्थक मानते हैं। हालांकि वे शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हैं। रजिस्टर में छात्रों की उपस्थिति का गलत आंकड़ा विकास खण्ड और जिले के आंकड़ों में जाता है। और प्रकट करता है कि स्कूलों में ऊँची संख्या में छात्र दर्ज हैं और उनकी उपस्थिति भी ज्यादा है। शिक्षक यह देखते हैं कि ऐसा करके वे बच्चों को उतनी हाजिर दे देते हैं कि जिससे की उन्हें अनाज का मासिक कोटा मिलने की पात्रता हो जाए।

एक मेहनती शिक्षक उन्हीं सुविधाओं के साथ अपनी जिम्मेदारियां पूरी कर सकता है यह मोतीपुर गांव के अनुसूचित जाति के एक शिक्षक के उदाहरण से पता चलता है।

दिसम्बर 15, 1999

मोतीपुर स्कूल एक शिक्षक वाला स्कूल है। शिक्षक आकर दरवाजे और खिड़कियां खोलता है। वह घण्टा बजाता है और समय पर 10.30 पर कक्षाएं लेना शुरू कर देता है। चूंकि वह अकेला ही है, वह अपने समय को पढ़ाने और लिखाने में बांट लेता है और अपने छात्रों को व्यस्त रखने में सफल होता है। वह 4.30 बजे तक अपनी कक्षाएं देता हैं। उसके रजिस्टर से पता चलता है कि 62 में से स59 छात्र हाजिर थे।

पर इस शिक्षक का तबादला 2000 के मध्य में हो जाता है, हालांकि कुछ पालकों ने विरोध किया और सरपंच को दर,ख्वास्त भी दी थी। फल यह हुआ कि सितम्बर–अक्टूबर 2000 तक स्कूल एकदम ठप हो गया। वह काफी समय तक बन्द रहा और जब वह खुला भी तो हाजिरी बहुत कम थी और उसमें बहुत कम पढ़ाई होती थी।

समुदाय और स्कूल के रिश्ते

किसी समुदाय की भूमिका, योगदान और रवैया शिक्षा कि स्तर और उसके हालात पर बहुत असर डाला है। खातेगांव में कई गांवों में–जैसे कि उन गांवों में जिनका अध्ययन विस्तार से किया गया है–निचले दर्जे के जाति समूहों की और आदिवासियों की कई पीढ़ियां स्कूल नहीं गयी हैं। ऐतिहासिक यप से यह जाति पर आधारित आर्थिक और शैक्षिक रूप से अलग थलग पड़ जाने के कारण था, लेकिन आज भी शिक्षा के प्रति एक सांस्कृतिक हिचक और सामूहिक संकोच मौजूद है। नीचे दर्जे के जाति समूहों के कई सदस्य शिक्षा के बारे में यह समझते थे कि वह "सेठ–साहूकार" के लिए बनी है।" कई मातापिता ने सवाल उठाया कि जब औपचारिक रोजगार मिलने की बहुत कम उम्मीद है तो वे अपने बच्चों को स्कूल क्यों भेजें। पर अपेक्षाकृत गहरी साक्षरता अभियानों और कुछ गैर सरकारी संस्थाओं की गतिविधियों के कारण अब ऐसा रुख ज्यादा व्यापक नहीं है। इसके बदले, शिक्षा कि लिए जबर्दस्त जोर हैं और कई मातापिता महसूस करते हैं कि इससे जिन्दगियां बदल सकती हैं।

फिर भी कुछ तत्व ऐसे हैं कि अशिक्षित और आर्थिक और राजनीतिक रूप से हाशिये पर रह रहे मातापिता ऐसी स्थिति हो जाते हैं, कि वे स्कूलों को ठीक काम करने के लिए कुछ नहीं कर पाते। एक तो कई अपढ़ मातापिता की भूमिका प्रबंधन और स्कूल के कामकाज में नहीं होती। कई लोगों ने यह मत व्यक्त किया कि स्कूल मातपिता की नहीं बल्कि शिक्षकों की जिम्मेदारी है।

"हमारी आदिवासी बस्ती है। लोग शिक्षा जैसी चीज को समझते नहीं।"

"पढ़ाना और स्कूल तो पंडितजी की जिम्मेदारी है–मैं उसमें क्यों पड़ूं।"

हालांकि विकेन्द्रीकृत प्रशासन के रूप में और जाति तथा भूमि पर आधारित ताकत के वंशानुगत ढांचे को चुनौती देने के तरीके के रूप में पंयाचत

प्रणाली लागू हो गयी है पर अभी भी ताकत प्रभावशाली जाति के किसानों के पास है। एक आदिवासी गांव मोतीपुर में मीणा जाति का एक व्यक्ति पटेल है और गांव में वही ताकतवर बना रहा। चुने हुए आदिवासी सरपंच को ऊंचा दर्जा नहीं दिया जाता और उसे असरदार भी नहीं समझा जाता था। पंचायत के सदस्य शिक्षा को महत्वपूर्ण मुद्दा नहीं मानते थे और हालांकि शिक्षा समिति की बैठकें बुलाना सरपंच की जिम्मेदारी है, ये बैठकें शायद ही कभी होती हैं।

हालांकि कई मातापिता ने अपने बच्चों को शिक्षित करना चाहा है पर उन्हें स्कूलों की दयनीय हालत से निराशा होती है क्योंकि स्कूल नियमित रूप से नहीं खुलते और वहां बच्चों की पढ़ाई नहीं होती। उन्हें यह नहीं सूझता कि वे ऐसा क्या करें कि स्कूल सुधर जाएं। वे शिक्षकों के आलोचक हैं क्योंकि उनका वेतन तो काफी ज्यादा है पर वे कोई खास काम नहीं करते। परिणाम यह होता है गांव के स्कूल इस बात के लिए बदनाम हो गये हैं कि वे बन्द रहते हैं।

आदिवासी मातापिता स्कूलों को ऐसी संस्था के रूप में देखते हैं जिनकी उनकी जिन्दगी में कोई सकारात्मक भूमिका नहीं है। असल में कई ने तो इसस पर जोर दिया कि स्कूल उनके बच्चों को नाकारा बना देते हैं और वे न तो घर के लायक रहते हैं और न काम करने के लायक– "न घर का न काम का"। इसका मतलब यह नहीं कि वे शिक्षा की कीमत नहीं करते। उनका मत यह जाहिर करता है कि प्रणाली कितनी ढीली है और इन्सान की पूरी क्षमता के साथ न्याय नहीं करती। एक ऐसी संस्कृति में जहां काम और कौशल कई किस्म के कामों में होना महत्वपूर्ण हैं, लोग मानते हैं कि ये बेकार के स्कूल उनके बच्चों में ढीलापन बढ़ाने का काम करते हैं।

मोतीपुर में लोग इस बात के प्रति चैतन्य हैं कि एक शिक्षक किस सीमा तक स्कूल के कामकाज में अन्तर डाल सकता है। उन्होंने देखा है कि पिछले दस

सालों में चार शिक्षकों में सेस दो ने सकारात्मक भूमिका अदा की है। 1999–2000 में कई पालकों ने एक शिक्षक की बहुत आलोचना की, जो शायद ही कभी स्कूल आता था। लेकिन किसी भी पालक ने उस शिक्ष्क के बारे में शिकायत करने की या उसके खिलाफ कोई कार्यवही की पहल नहीं की। सभी तीनों गांवों में पालकों ने जिम्मेदारी की कोई भावना नहीं प्रकट की और स्कूल के कामकाज के बारे में अपने अधिकारों का उपयोग नहीं किया। स्कूल से संबंधित मुद्दों का हल करने के लिए लोग कितने लाचार हैं यह नीचे लिखे विवरण से जाहिर होता है :

1. हालांकि लोगों को शिक्षकों और स्कूल ढंग से न चलने के बारे में कई शिकायतें हैं लेकिन उन्होंनं ब्लाक शिक्षा अधिकारी से शिकायत नहीं की।
2. शिक्षा या स्कूल के कामकाज के सवाल पर चर्चा करने के लिए सरपंच से नहीं कहा गया।
3. कई पालकों को शिक्षा समिति के बारे में नहीं मालूम था।
4. शिक्षकों से यह नहीं पूछा गया कि वे गैरहाजिर क्यों रहते हैं और वे बच्चों को स्कूल में न आने के लिए क्यों कहते हैं।
5. पालक शायद ही कभी स्कूल जाते हैं।
6. स्कूलों के प्रति पंचायतों का योगदान न्यूनतम हैं।

पंचायत शिक्षा को केन्द्रीय मुद्दा नहीं मानती और उस पर ध्यान नहीं देती। बडियाली में पंचायत की सरपंच एक अनुसूचित जाति की महिला है और खास ध्यान आवास योजनाओं पर और पीने के पानी पर दिया जा रहा है। कई लोगों को शिक्षा समिति के बारे में नहीं मालूम। स्कूल के बाहर जो बच्चे हैं उनके बारे में कोई चर्चा नहीं होती और हालांकि अक्अूबर 2000 में पढ़ना बढ़ना[8] के बारे में एक बैठक हुई था पर स्कूल और उसके ढंग से न चलने के बारे में कोई बात नहीं हुई।

8.मध्यप्रदेश सरकार द्वारा प्रौढ़ों के लिए साक्षरता कार्यक्रम

कमलीपुर में शिक्षा समिति में 12 सदस्य हैं और उसका प्रमुख एक पंच है जो बी ए पास है और एक दूकान तथा कुछ जमीन का मालिक है। पूरे सन 2000 में शिक्षा समिति की बैठक सिर्फ 3 बार हुई। बैठक 1 सितम्बर 1999 को हुई थी जिसमें सिर्फ 4 सदस्य हाजिर थे और उन्होंने फर्नीचर खरीदने के बारे में चर्चा की। हालांकि पंच स्कूल जाता है, पर वह छात्रों की दर्ज संख्या और उपस्थिति की जांच नहीं करता।

मोतीपुर पंचायत स्कूल के प्रति उदासीन है हालांकि एक शिक्षक पंचायत से स्कूल की इमारत की मरम्मत करवाने में कामयाब हुआ था। 12 शिक्षा समिति सदस्यों में से 6 निरक्षर हैं, चार प्राथमिक पास हैं, एक ने कक्षा 6 पूरी की है और दूसरे ने कक्षा 8 पूरी की है। शिक्षक के अनुसार जब बैठक बुलाई भी जाती है तो सदस्य हाजिर नहीं होते और शिक्षक से कहते हैं कि शिक्षक रजिस्टर में जो भी चाहे भर ले। इसके बाद वे उस दस्तावेज के प्रमाणीकरण के लिए अपने अंगूठे लगा देते हैं।

स्कूल प्रशासन

स्कूलों के प्रशासन में ढिलाई कई स्तरों पर साफ दिखती है। डी पी ई पी और ई जी एस जैसी नयी योजनाओं के कारण कई बस्तियों में कम से कम एक कमरा ऐसा हो गया है जिसे "स्कूल" कहा जा सकता है। लेकिन इन स्कूलों के कामकाज और पढ़ाने और सीखने के सही तरीकों को पुख्ता नहीं किया गया है। हालांकि डी पी ई पी योजना के लागू होने से स्कूल निरीक्षक के स्थान पर जनशिक्षक नामक एक शैक्षिक समन्वयक की नियुक्ति हो गयी है, पर स्कूलों के कामकाज और पढ़ाने के तरीकों के समग्र निरीक्षण

9. ब्लाक में प्राथमिक शालाओं की संख्या 165 से 180 हो गयी है।

में बहुत कम सुधार हुआ है या हुआ ही नहीं हैं। स्कलों का शायद ही कभी निरीक्षण होता है और निरीक्षण न होने से ज्यादातर गांवों में शिक्षक बहुत गैरहाजिर रहते हैं। जिन तीन गांवों का अध्ययन किया गया है उन सभी गांवों में न तो ब्लाक शिक्षा अधिकारी और न शिक्षा विभाग का कोई व्यक्ति स्कूल निरीक्षण करने आया है। निरीक्षण सन होने का मतलब यह है कि शिक्षक के प्रशिक्षण में जो राशि खर्च की गयी है वह बरबाद हो गयी। उदाहरण के लिए, हालांकि कई शिक्षकों को नवीन डी पी ई पी में और "खेल खेल में" कार्यक्रमों में प्रशिक्षित किया गया है, और कुछ शिक्षकों ने इन्हें पसन्द भी किया है, पर ज्यादातर शिक्षकों ने अपने प्रशिक्षण का उपयोग स्कूलों में नहीं किया। उनका निरीक्षण न होने से वे फिर से पढ़ाने के पुराने परम्परागत तरीकों में लौट गए। इसी प्रकार, शिक्षा की सहायक सामग्री का उपयोग नहीं किया गया और यहां तक कि स्कूल का कामकाज याने नियमित रूप से स्कूल खुलना, नियमितता आदि संतोषजनक नहीं थे। रजिस्टर में हमारे जो आंकड़े हैं वे बताते है कि उपस्थिति तथा दर्ज संख्या बहुत ज्यादा बढ़ाकर इसलिए बताए गए थे कि प्रशासन कमजोर था तथा स्थानीय समुदाय के प्रति शिक्षकों की जवाबदेही नहीं थी।

शायद स्कूल के बारे में प्रशासन की यह बात एकदत चौकाने वाली है कि प्रधान अध्यापक और शिक्षकों के बीच तथा प्रशासन और शिक्षकों के बीच अभी भी पदक्रम (हेरार्की)के रिश्ते हैं। शिक्षक टीम के रूप में या सहयोग से नहीं के बराबर काम करते हैं। ज्यादा से ज्यादा यह होता है कि वे इस बात पर एकमत होते हैं कि कब छुट्टी पर जाना है। स्कूल चलाने और शिक्षा की गुणवत्ता के लिए सामूहिक जिम्मेदारी की भावना का शायद ही कोई प्रमाण हैं।

डी पी ई पी योजना से संबद्ध नया ढांचा लागू होने से ब्लाक और जिला स्तर पर शिक्षा प्रणाली को समग्र रूप से जान आई है, पर डी पी ई पी के ढांचे और मौजूदा ढांचे के बीच संपर्क में कुछ समस्याएं आयी हैं। ब्लाक स्तर पर

विकेन्द्रीकृत प्रशासन और डी पी ई पी की योजनाओं का दोनों प्रकार से असर हुआ है। इधर ग्राम शिक्षा समितियों का और स्कूल प्रशासन में पंचायतों की भूमिका अभी भी पूरी तरह से स्थापित होना बाकी हैं और उधर ब्लाक एजुकेशन आफिसर ने खुद को स्कूल के प्रशासन से आंशिक रूप से अलग कर लिया हैं। इससे निरीक्षण के ढांचे में एक खालीपनस आ गया है। ब्लाक शिक्षा अधिकारी का कार्यालय अब यह उम्मीद करता है कि सभी पंचायतें स्कूलों की यवस्था करने और उनका सप्रशासन करने में समर्थ हैं। इतने पर भी, जैसा कि पहले संकेत दिया जा चुका है, पंचायत और पंचायत की शिक्षा समितियों को खुद को ठीक से स्थापित करना और काम करना बाकी है।

इसी प्रकार, डी पी ई पी तथा शिक्षा प्रशासन के दूसरे ढांचों के बीच खाई बढ़ती जा रही है। उदाहरण केस लिए, डी पी ई पी का नया ब्लाक स्रोत केन्द्र और क्लस्टर स्रोत केन्द्र शिक्षकों के नये तरीकों का प्रशिक्षण देने के लिए उपयोगी रहे हैं। पर इन केन्द्रों, डाएटों और ब्लाक शिक्षा अधिकारियों के बीच में कोई समन्वय नहीं है, या बहुत कम समन्वय है। यदि इन विभिन्न ढांचों का कामकाज और जिम्मेदारियां ज्यादा धारदार होतीं तो नये कार्यक्रम को बेहतर ढंग से जड़ें पकड़ने में सहायता मिलती।

स्कूल और समुदाय के कार्यक्रम

स्कूलों के प्रशासन और प्रबंधन में एक मुख्य मुद्दा है स्कूल के कार्यक्रम और समुदाय के पारिस्थितिकीय और आर्थिक कार्यक्रम में तालमेल न होना। दोनों के बीच जो तनाव है उससे कुछ खास अवधि के दौरान छात्र ज्यादा गैरहाजिर रहते हैं और परिणाम यह होता है कि ज्यादा छात्र स्कूल छोड़ देते हैं। खातेगांव इलाके में समुदाय की गतिविधियों और स्कूल के कार्यक्रम में कई तनाव हैं।

जुलाई से अगस्त न सिर्फ बुवाई का मौसम होता है बल्कि इन दिनों कई

स्थानीय त्यौहार और कर्मकाण्ड होते हैं। पर यह तब हैं जब स्कूल नयी कक्षाओं के लिए फिर से खुलें और छात्र कक्षाओं में हाजिर हों। सितम्बर–अक्टूबर फसल की कटाई का मौसम होता है, खासकर मूंगफली, सोयाबीन और कपास के लिए। इसी तरह ज्यादा गरीब बच्चों से उम्मीद की जाती है कि वे मार्च के फसल कटाई के मौसम में सहायता करें। बच्चे इस दौरान गैरहाजिर रहते है क्योंकि वे इन कामों में और अन्य कामों में अपने मातापिता की सहायता करते हैं। खेत में बड़ों के लिए खाना ले जाने, शिशुओं की देखभाल करने, मातापिता के खेत में होने के कारण और भी घरू काम करने से इस दौरान बच्चे स्कूल नहीं जा पाते। पर जब स्कूल वास्तव में बन्द रहता हैं (अप्रैल–जून) तब खेती का काम भी कम रहता है और सतब कोई बड़े त्यौहार भी नहीं होते। पर, इस समय भी स्कूल बन्द रहते हैं।

इसके अलावा बच्चे पूर्णिमा और परीवा (प्रथमा) के दिन भी गैरहाजिर रहते हैं क्योंकि ये दिन शुभ माने जाते हैं। और,,खासकर आदिवासी लोग इन दिनों नर्मदा की यात्रा करते हैं। लेकिन स्कूल के कैलेण्डर में राष्ट्रीय दिवसों, जैसे बुद्धजयन्ती और दूसरे धार्मिक त्यौहार का इस इलाके के लोगों के लिए कोई महत्व नहीं होता। ऐसा लगता है कि स्थानीय गतिविधियों के लिए छुट्टियों की व्यवस्था करने की कोई कोशिश नहीं होती। ऐसा करने से छात्रों की गैरहाजिरी कम हो सकती हैं।

स्कूलों में प्रदाय और वितरण की समस्याएं

वैसे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों को पाठ्यपुस्तकें मुफ्त में मिलती हैं पर किताबें ठीक से और समय पर नहीं पहुंचतीं। बडियाली में 1999 में 100 बच्चों के लिए पाठ्यपुस्तकों के सिर्फ 50 सेट आए। कामलीपुर में 183 बच्चों में से सिर्फ 136 को पाठ्यपुस्तकें मिलीं। मोतीपुर में हालांकि 60 बच्चों के नाम दर्ज थे लेकिन सिर्फ 6 पोषाकें पहुंचीं।

स्कूल सामग्री ठीक ढंग से न पहुंचने से छात्रों, शिक्षकों और पालकों के सामने कई समस्याएं पैदा होती हैं। शिक्षकों को यह देखना पड़ता है कि सबसे गरीब कौन हैं और उनहें किताबें बांटना पड़ता है। पालक इसे भेदभावपूर्ण मानते हैं और कई लोग किताबें खरीदने से मना कर देते हैं चाहे उस सत्र में स्कूलस में काफी किताबें हों। जबकि शिक्षक इसे शिक्षा के प्रति पालकों की उदासीनता का और सरकार पर कुछ ज्यादा निर्भरता का संकेत मानते हैं, पालक कहते हैं कि किताबें खरीदने की उनकी हैसियत नहीं है। ऐसी समस्याएं शिक्षकों और पालकों के बीच तनाव भी पैदा करती हैं।

हालांकि शिक्षकों को इस बात की अनुमति नहीं है कि जिन बच्चों के पास किताबें नहीं हैं उन बच्चों को वे स्कूल आने से रोकें पर हमे ऐसे दो बच्चे मिले जिन्हें उनके शिक्षक ने स्कूल आने से मना कर दिया था। उनमें से एक 8 साल की लड़की थी। उसे हालांकि स्कूल आने से मना किया गया था, पर वह कक्षा के बाहर खड़ी रहती थी।

कक्षा 3 से लेकर कक्षा 5 तक के अनुसूचित जाति और अनसूचित जनजाति के सभी बच्चों को हर साल रु. 150/– पाने की पात्रता है। दूसरे पालक इसे देखकर यह महसूस करते हैं कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के समूहों के साथ सरकार पक्षपात करती है। बच्चों को यह राशि दिया जाना कई शिक्षकों को भी खराब लगता है। अनाज योजना में 80 फीसदी से ज्यादा उपस्थिति वाले हर छात्र को 3 किलो गेहूं पाने की पात्रता होती है और ऐसा माना जाता है कि यह योजना कियान्वित हों रही है, पर गेहूं का प्रदाय संतोषजनक नहीं है।

शिक्षक

शिक्षकों की समस्याएं – यह कहना बहुत सरल है कि शिक्षा प्रणाली का मुख्य घटक शिक्षक हैं और ठीक से स्कूल न चलने के लिए उसे जिम्मेदार

ठहराया जा सकता है। फिर भी शिक्षकस कई समस्याओं का सामना करते है। वे काम की खराब परिस्थितियों, शिक्षा प्रशासन द्वारा तय किये गए काम और शिक्षकों का नाकाफी प्रशिक्षण और उन्मुखीकरण के भंवरजाल में फंसे रहते हैं।

शिक्षकों के काम की सामान्य परिस्थितियां बड़ी निराशाजनक हैं। स्कूलों में सुविधाएं कम हैं। जिन स्कूलों का हमने अध्ययन किया उन सभी में छत टपक रही थी, फर्श उखड़ा हुआ था, इमारत में पुताई नहीं हुई थी और ब्लैक बोर्ड के लिए पर्याप्त जगह नहीं थी। शिक्षकों ने बुनियादी ढांचे की समस्याओं के बारे में शिकायत की और बताया कि छत जिस प्रकार है उससे वह गिर सकती है और उनकी जान को खतरा हो सकता है। जैसे कि कई शिक्षकों ने बताया, कमरों में उनकी क्षमता से तीन गुना ज्यादा छात्र होने से उनके काम में बाधा होती है। ऐसी भीड़ वाली कक्षा में कई कक्षाओं को पढ़ाना एक कठिन काम है क्योंकि शिक्षक को न सिर्फ सीमित जगह से काम चलाना पड़ता है बल्कि छोटे और सक्रिय बच्चों को सम्हालना भी पड़ता है। हालांकि बाहर के गांव से स्कूल आने से समय तो बरबाद होता ही है, और बरसात के मौसम में सड़कें बन्द होने से गांव आना असंभव होता हैं पर गांव में रहना कठिन है। गांव में मकान नहीं मिलते और वहां जो सुविधाओं की कमी है उससे गांव में परिवार के साथ रहना मुश्किल हो जाता है।

शिक्षकों की शायद सबसे बड़ी शिकायत यह है कि उन्हें बहुत ज्यादा गैर शैक्षणिक काम करना पड़ता है। एक शिक्षक का कहना था, "शिक्षकों से जानवरों की तरह व्यवहार होता है और उन पर ढेर सारा काम लाद दिया जाता है।" उनसे उम्मीद की जाती है कि वे दूसरे गैर शैक्षणिक काम करें। इससे नियमित रूप से पढ़ाने के काम में बाधा पहुंचती है। गैर शैक्षणिक काम ये हैं।

1. डाक का काम (दर्ज संख्यासय और पंजीकरण का विवरण ब्लाक शिक्षा अधिकारी को देना)
2. जनगणना
3. गरीबी रेखा से नीचे का सर्वेक्षण
4. चुनावकार्य
5. पशुगणना
6. दर्जसंख्या बढ़ाने का अभियालन
7. पल्स पोलियो अभियान
8. बच्चों को दिये जाने वाले अनाज का कार्ड भरन

हर माह के चार दिन डाक के काम में लग जाते हैं। जिन स्कूलों में एक ही शिक्षक होता है उनके लिए ऐसे गैर शैक्षणिक काम बहुत समस्या पैदा करते हैं। जब शिक्षक स्कूल और अतिरिक्त काम दोनों को नहीं सम्हाल पाते तो वे स्कूल बन्द कर देते हैं। इसके कारण स्कूलों के बन्द रहने की दर ज्यादा हो जाती है।

शिक्षक और उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि

स्कूलों के कामकाज में ये कुछ समस्याएं तो हैं ही पर शिक्षकों की सामाजिक पृष्ठभूमि भी समुदाय के साथ मोटे तौर पर और बच्चों के साथ खास तौर पर, उनके रिश्तों पर असर डालती है। हालांकि इन गांवों में ज्यादातर बच्चे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के हैं, ज्यादातर सशिक्षक अपेक्षाकृत ऊंची जाति की पृष्ठभूमि के हैं। ब्लाक में शिक्षकों की जो सामाजिक पृष्ठभूमि है वही जिले के शिक्षकों के बारे में कहा जा सकता है। 11
उदाहरण केस लिए, 1999 में शिक्षकों की जाति की पृष्ठभूमि इस प्रकार थी– 47 फीसदी सामान्य वर्ग, 25 फीसदी अन्य पिछड़ी जातियां, 17 फीसदी अनुसूचित जाति, 9 फीसदी अनुसूचित जनजाति। इसके अलावा सिर्फ स25 फीसदी शिक्षिक स्त्रियां हैं। जाति के इस फर्क का असर शिक्षकों के उस

अनुमान पर होता है जो वे बच्चों की पढ़ने की योग्यता के बारे में और सरकारी सहायता के लिए उनकी पात्रता के बारे में लगाते हैं। जाति संबंधी बातों का असर शिक्षकों और छात्रों के बीच संवाद पर भी होता है। हालांकि गांव में छुआछूत जारी है, स्कूलों में इसका पालन नहीं किया जाता। पर सिर्फ ऊंची जाति के शिक्षकों ने ही नही बल्कि और भी बहुत से शिक्षकों ने बच्चों की योग्यताओं के बारे में नकारात्मक मत और आकलन दिया।

बच्चों को स्कूल आने के लिए दिये जाने वाले सरकारी प्रलोभनों के प्रति भी बहुत से शिक्षकों ने नाराजी जाहिर की। उन्होंने बताया,"उन्हें मुफ्त अनाज, मुफ्त किताबें, पोषाक.....दी जाती है और फिर वे स्कूल नहीं आते।" ऊंची जाति के एक पुरुष शिक्षक का मत था कि बच्चों को स्कूल में आना पुख्ता करने का यहीं रास्ता है कि उनके मातापिता को मजबूर किया जाये। "स्कूलों में शिक्षा में तभी सुधार होगा जब स्कूल जाना अनिवार्य कर दिया जाएगा। मातापिता को कई चीजें मुफ्त मिलती हैं–राशन, शक्कर, गेहूं और इन सबका रिश्ता बच्चों के स्कूल में दर्ज होने से कर दिया जाना चाहिए। पर हमारा देश प्रजातंत्र है– कैसे किसी को मजबूर किया जा सकता है?" कामलीपुर के ऊंची जाति वाले प्रधानाध्यापक ने बताया, "पहले शिक्षा अच्छी होती थी। सिर्फ चुनिन्दा छात्र पढ़ने आते थे। वे तेज और होशियार होते थे। अब सरकारी लक्ष्य के बच्चे भरती अभियान के बाद आते हैं। उन्हें आने पर मजबूर किया जाता है हालांकि उनकी रुचि नहीं होती।"

जबकि ऐसे मत बताते हैं कि नीची जाति के बच्चों के प्रति कितनी नाराजी है, बच्चों का मूल्यांकन करने में भी जातिगत भेदभाव किया जाता है। एक ऊंची जाति की मध्यमवर्गीय शिक्षिका ने, जो खातेगांव में रहती है और अपने बच्चों को एक निजी स्कूल में भेजती है, शिकायत की कि सरकारी स्कूलों के बच्चों में अनुशासन की कमी है। "मैं इन बच्चों को बताती हूं, 'देखो, मेरी बेटी घर लौटकर खेल पर जाने के पहले अपना गृहकार्य करती है।' पर ये बच्चे अपना गृहकार्य कभी नहीं करते।" गांव में रहने वाले एक कोरकू शिक्षक का

ख्याल था कि गांव के बच्चे शहर के बच्चों की तुलना में मंदबुद्धि के हैं। उसने खुद ने एक कस्बे में शिक्षा पाई थी और उसका ख्याल था कि चूंकि गांव के बच्चे पढ़ने में कमजोर होते हैं इसलिए वे शब्दों का ठीक उच्चारण नहीं कर पाते। उसने यह भी कहा कि चूंकि गांव के बच्चे नियमित रूप से स्कूल नहीं आते इसलिए वे "जो भी पढ़ाया जाता है उसे भूल जाते हैं"।

इन सभी बयानों से कामगार/मजदूर पालकों की रहने की परिस्थितयों के प्रति उदासीनता और सरकार द्वारा शिक्षा प्रोत्साहन कार्यक्रमों के खिलाफ नाराजी जाहिर होती है। शिक्षक स्कूलों के चलने में अपने खुद के योगदान, अपने सोचने के तरीके और अपनी भूमिका के बारे में तो आकलन करते नहीं बल्कि वे सारा दोष पालकों पर,, उनकी उदासीनता पर और गांव के नीची जाति के बच्चों में सीखने की काबिलियत न होने पर मढ़ते हैं। सोचने के ऐसे तरीकों से पता चलता है कि शिक्षक स्कूल और पढाने सिखाने के काम की अपनी जिम्मेदारी को गंभीरता से नहीं लेते। गैर शिक्षकीय काम ज्यादा होने के बारे में और काम करने के मुश्किल और प्रतिकूल हालातों आदि के बारे में उनकी शिकायत वाजिब है पर हालात सुधारने के लिए उनकी अनिच्छा के कारण स्कूलों की हालत ज्यादा खराब हो गयी है।

शिक्षक के सोचने के तरीके से शिक्षक का क्या असर होता है यह मोतीपुर के एक अनुसूचित जाति के शिक्षक श्री गोयल की बात से साफ है, "ज्यादातर बच्चे ऐसे घरों से आते हैं जिनकी माली हालतस खराब है। बड़े बच्चे छोटों की देखभाल करते हैं। यह हमारा कात है कि हम मातापिता से सम्पर्क करें और बच्चों को स्कूल लाएं।" चूकि उसे इन परिवारों की हालत की और बच्चों की परेशानी की समझस थी इसलिए उसने मातपपिता से व्यक्तिगत सम्पर्क सकिया और बच्चों को स्कूल आने के लिए प्रोत्साहित किया। नियमित रूप से स्कूल आकर और सचमुच में बच्चों को पढ़ाकर, वह एक स्कूल को चालू रख सका। उसके सोचने के तरीकों और कोशिशों ने एक

सफल और असरदार स्कूल चलने में उसकी मदद की, जबकि बुनियादी सुविधाओं की कमी थी और कई कक्षाओं को उसे पढ़ाना पड़ता था।

श्री गोयल स्कूल शुरू होने के 15 मिनट पहले स्कूल परिसर को खोल देते हैं। छात्रों से आग्रह करते हैं कि वे फर्श पर झाड़ू लगा दें और घण्टी बजा दें। फिर वे स्कूल के बाहर खड़े हो जाते हैं और छात्रों को भीतर बुलाते हैं। कक्षाओं की व्यवस्था करने के लिए वे एक कक्षा को लिखने का काम दे देते हैं और दूसरी को पाठ समझाते हैं। किताबों के कुछ शब्दों और अवधारणाओं को समझाने के लिए गोंडी बोली का उपयोग करते हैं। वे बच्चों के लिए खेल का एक पीरियड रखते हैं। फिर नियत समय पर स्कूल बन्द करते हैं।

कक्षा के अवलोकन

कक्षा की व्यवस्था और पढ़ाने–सीखने के तरीके: जिन कक्षाओं का अवलोकन किया गया उनमें से ज्यादातर कुछ व्यवस्थित नहीं थीं। कई शिक्षक अकसर देर से आते थे और कई बार प्रार्थना या असेम्बली नहीं होती थी और हाजिरी नहीं ली जाती थी। दो गांवों में देखा गया कि स्कूल देर से खुलते हैं और जल्दी बन्द होते हैं। कुछ ही शिक्षक एक घण्टे तक लगातार कक्षाएं लेते थे और कई बार तो बच्चे कक्षा के काम में पूरी तरह मशगूल नहीं रहते थे।

पढ़ाने–सीखने का जो तरीका था उसमें काफी सुधार की गुंजाइश थी। शोधकर्ता ने सभी स्कूलों की ज्यादातर कक्षाओं में नीचे लिखी बातें देखीं।

1. गणित को छोड़कर बाकी सभी विषयों को पढ़ाने में शिक्षक के कथन को दोहराने का सबसे ज्यादा इस्तेमाल किया जाता था। जिन नौ शिक्षकों का साल भर तक बारीकी तक अवलोकन किया गया था उनमें से सिर्फ दो ही बच्चों को मुद्दों या विचारों को समझाते थे।

2. बच्चों को अकसर बोर्ड से या पाठ्य पुस्तक से नकल करने के लिए कहा जाता था और उस दौरान सशिक्षक दूसरे कामों में मशगूल रहते थे।
3. बच्चों की तरफ या तो बहुत कम ध्यान दिया जाता था या दिया ही नहीं जाता था और अकसर बच्चों की कापियों की गलतियां सुधारी नहीं जाती थीं। ज्यादातर शिक्षक लापरवाही से या समशीनी तरीके से बच्चों का काम देखते थे। फल यह होता था कि वे बच्चों की गलतियां नहीं देख पाते थे और बच्चों के ध्यान में वे गलतियां नहीं ला पाते थे।
4. बच्चों से यह उम्मीद की जाती थी कि उन्हें सभी सवालों के जवाब मालूम हैं और जब उनसे किसी सवाल का जवाब नहीं बनता था तो अकसर उन्हें सजा दी जाती थी या उन्हें फटकारा जाता था।
5. हालांकि ज्यादातर शिक्षकों को डी पी ई पी कार्यक्रम के अन्तर्गत पढ़ाने के नये तरीकों का प्रशिक्षण दिया गया था पर नौ में से दो शिक्षक ही इस प्रणाली का इस्तेमाल करते थे। ज्यादातर शिक्षकों ने बच्चों पर केन्द्रित इस नयी प्रणाली को अप्रासंगिक, असंभव या निरर्थक बताकर खारिज कर दिया था। उनमें से ज्यादातर शिक्षक डी पी ई पी द्वारा दी गयी सहायक सामग्री का उपयोग भी नहीं करते थे।

नियंत्रण करने का तरीका

शारीरिक दण्ड– चांटा मारना, पीटना, छड़ी मारना– कक्षाओं और बच्चों को काबू में रखने का सबसे प्रचलित तरीका था। बच्चों को कई प्रकार के कारणों से व्यक्तिशः या सामूहिक रूप से पीटा जाता था, जैसे कक्षा में शान्त न रहना, लड़ना, गैरहाजिरी के लिए इजाजत न लेना, कापी या पाठ्यपुस्तक को ठीक से न रखना आदि।

शिक्षक–छात्र रिश्ते

छात्रों और शिक्षकों के बीच ऊंचे नीचे का रिश्ता है यह इस बात से जाहिर होता है कि बच्चे शिक्षक को "सर" या "मैडम" कहते हैं और शायद ही उनसे खुलकर बात करते थे। इसके अलावा भाषा और तौर तरीका हमेशा छात्रों को

नीचे दर्जे का ही जताते थे। बच्चों का मजाक उड़ाना बहुत प्रचलित है। बच्चों को एक दूसरे का और दूसरों का मजाक उड़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। शिक्षकों और छात्रों के बीच ऊंचे–नीचे और औपचारिक होने के रिश्ते का मतलब यह है कि बच्चे शिक्षकों से डरते तो हैं पर उनकी अवज्ञा करते हैं क्योंकि वे उनकी इज्जत नहीं करते।

स्कूल में एक दिन

11 बजकर 20 मिनट पर एक शिक्षिका बस से पहुचती हैं और दो कमरों का स्कूल खोलती है। कक्षा 4 के 7 छात्र उसके साथ स्कूल में दाखिल होते हैं। वे झाड़ू उठाते हैं और कमरों में झाड़ू लगाते हैं। 11 बजकी 45 मिनट पर करीब 25 बच्चे एकत्र होते हैं और उनमें से दो को स्वेटर पहनने के लिए घर वापिस भेज दिया जाता है। और भी बच्चे आते हैं और अपनी जगह बैठ जाते हैं। हाजिरी लेते समय शिक्षिका यह दोहराती रहती है कि "अपनी चप्पलें उतारकर बाहर रखो। शोर मत करो।" वह कक्षास 4 के एक लड़के को बुलाती हैं और पिछले दिन स्कूल से जल्दी चले जाने के कारण उसे डांटती है। उसकी हथेली पर 10 बार छड़ी मारी जाती है। 12 बजे वह प्रधानाध्यापक को बुलाने के लिए एक लड़के को भेजती हैं। 15 मिनट बाद प्रधानाध्यापक आते हैं जो कि मैलीकुचैली हालत में होते हैं। वे और सशिक्षिका चर्चा करते हैं कि चूंकि ठण्ड हैं इसलिए वे स्कूल बन्द कर दें या न करें। जब वह यह चर्चा कर रहे होते हैं तब बच्चे आपस में बात करते हैं और खेलते हैं। जब शोर बढ़ जाता है तो प्रधानाध्यापक कहते हैं, "अरे, तुम लोग शान्ति से नहीं बैठ सकते? तुम सब बैठ जाओ , सवाल जवाब पढ़ो और कुछ जोड घटाना करो।" बच्चे कुछ समय के लिए शान्त हो जाते हैं और इसके बाद शोर फिर से बढ़ जाता है। 12 बजकर 30 मिनट से लेकर 1 बजकर 30 मिनट तक बच्चे शिक्षकों को अपनी कापी में उन्होंने जो कुछ लिखा है उसे दिखाते हैं। पढ़ाया नहीं जाता। 1 बजकर 30 मिनट पर शिक्षिका यह कहते हुए जाने को तैयार हो जाती है कि उसे बस पकड़ना है। 2 बजे प्रधानाध्यापक बच्चों को बताते हैं कि स्कूल बन्द हो रहा है। बच्चे खुश होकर स्कूल से जाते हैं।

निजी स्कूलों की बढ़ोतरी

सरकारी स्कूलों के पतन और बच्चों की संख्या में बढ़ोतरी तथा ढीले प्रशासन के कारण ब्लाक में निजी स्कूलों की संख्या बहुत बढ़ गयी है। 1996 से एक निजी स्कूल कामलीपुर गांव में चल रहा है जिसमें भूमिपतियों और ऊंची जाति के परिवारों के बच्चे पढ़ते हैं। बच्चों के मातापिता का ख्याल है कि गांव के सरकारी प्रायमरी स्कूल की तुलना में यह स्कूल बेहतर ढंग से चलता है और ठीक है। चूंकि यह स्कूल नियमित रूप से खुलता है,गृहकार्य दिया जाता है और जांचा भी जाता है और समय समय पर परीक्षाएं होती हैं इसलिए स्कूल को अच्छा समझा जाता है। हालांकि शिक्षक–पालक संघ जैसी कोई चीज नहीं है और चार शिक्षकों को 500–700 रुपये प्रतिमाह वेतन दिया जाता है इसलिए मातापिता इन शिक्षकों को ज्यादा भरोसेमंद और समर्पित समझते हैं। मातापिता के लिए एक आकर्षण यह भी है कि स्कूल पहली कक्षा सेस अंग्रेजी पढ़ाने का दावा करता है, जिससे वह सरकारी स्कल से एक कदम आगे है। पहली कक्षा 1–3 के लिए 30 रुपये, कक्षा 4–5 के लिए 40 रुपये और कक्षा 6–8 के लिए 50 रुपये प्रतिमाह फीस ली जाती है। सभी मातापिता की हैसियत इतनी फीस देने की नहीं होती इसलिए कई मातापिता सोयाबीन या कपास की फसल आने के बाद फीस देते है। निजी स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे का औसत खर्च करीब 1500 रुपये आता है।

कुछ मातापिता मानते हैं कि चूंकि वे फीस देते हैं इसलिए उन्हें यह तय करने का अधिकार है कि उनका बच्चा किस कक्षा में पढ़ने के योग्य है। प्रधानाध्यापक ने दो ऐसे बच्चे बताए जो सिर्फ 4 और 6 साल के हैं लेकिन उन्हें क्रमशः कक्षा 2 और 3 में पढ़ने के लिए मातापिता ने मजबूर किया।

इस गांव में निजी स्कूल कायम होने से बच्चों के शैक्षिक अवसरों तथा शिक्षा प्रणाली के विकास पर कई प्रकार के असर हुए हैं। ऐसे स्कूलों में आर्थिक

रूप से सम्पन्न गांव में प्रभाव रखने वाले मातापिता के बच्चे दाखिला लेते हैं। जब ये मातापिता अपने बच्चों को सरकारी स्कूल से हटा लेते हैं तो वे शिक्षा समिति जैसे नए ढांचों को प्रशासकीय और प्रबंधन संबंधी सहयोग देना भी बन्द कर देते हैं। इस प्रकार इन स्कूलों में वर्ग और जाति पर आधारित दरार बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए कामलीपुर में जब 1941 में सरकारी स्कूल शुरू हुआ था तब 41 छात्रों की जाति इस प्रकार थी–

ऊंची जातियां	56 फीसदी
पिछड़ी जातियां	27 फीसदी
अनुसूचित जनजाति	12 फीसदी
अनुसूचित जाति	5 फीसदी

1999 में इस ढांचे में बदलाव आ गया। 183 छात्रों की जाति इस प्रकार थी–

ऊंची जातियां (सामान्य वर्ग)	6 फीसदी
अन्य पिछड़ी जातियां	25 फीसदी
अनुसूचित जनजाति	28 फीसदी
अनुसूचित जाति	39 फीसदी

2000 में सामान्य वर्ग के सिर्फ एक छात्र ने पहली कक्षा में दाखिला लिया था, जबकि नया दाखिला लेने वालों में ज्यादातर छात्र अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति के परिवारों के थे। ये आंकड़े बताते हैं कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों का दाखिला ज्यादा हुआ। ऊंचीस जाति के बच्चों के दाखिला के आंकड़ों में कमी से एक विभाजित स्कूल प्रणाली का संकेत मिलता है। ऊंची और मध्यम जाति के बच्चे अब निजी स्कूल में जा रहे हैं जबकि निचली जातियों और आदिवासियों के बच्चे सरकारी स्कूल में जा रहे हैं।

निजी स्कूल जाति और वर्ग के आधार पर बंटवारे को प्रोत्साहित तो करते ही हैं, इसके अलावा शिक्षा के अवसरों में लिंग के आधार पर अन्तर भी व्याप्त हो गया है। जैसा कि निजी स्कूल का 1999 का विवरण बताता है, कुल दर्ज बच्चों में से सिर्फ 34 फीसदी लड़कियां हैं, जबकि सरकारी स्कूल में लड़कियों की संख्या कुल दर्ज संख्या में से 50 फीसदी है। यह बात साफ है कि सपरिवार अपने लड़कों को तो खर्च उठाकर निजी सकूल में भेजते हैं लेकिन लड़कियों के लिए सरकारी स्कूल ही काफी समझा जाता है। पूरे गांव के सभी आंकड़े उपलब्ध नहीं थे लेकिन हमने पाया कि गांव का एक बहुत सम्पन्न राजपूत परिवार अपनी बेटी को तो सरकारी स्कूल भेजता है पर अपने दो बेटों को वह निजी स्कूल में भेजता है। ऐसे नजरिये से शिक्षा के अवसरों में लिंग आधारित फर्क ही बढ़ेगा।

स्कूल के अवसरों में इन अन्तरों का मतलब यह है कि अलग अलग जाति और वर्ग समूहों में जो सामाजिक अन्तर है उसे पाटने में स्कूल और स्कूल की पढ़ाई का उपयोग नहीं हो पाएगा। ऐसे हालात में इन गांवों के बच्चे एक ही संस्था में पढ़ने के अनुभव से वंचित रह जाएंगे। इसके साथ ही वह उनकी शैक्षिक योग्यता और उन्मुखीकरण में जो फर्क मौजूद है उससे उनका सामाजिक और जातिगत फर्क और भी ज्यादा बढ़ेगा और मजबूत होगा।

स्कूलों के बाहर के बच्चे

ब्लाक के स्कूल काम नहीं करते यह इस तथ्य से साफ होता है कि तीनों गांवों को मिलाकर स्कूल के बाहर के 6 से 1 साल के बीच के बच्चों की संख्या 189 है। उनके स्कूल से बाहर रहने के कई कारण हैं। इसमें एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि स्कूल के बाहर के 58 फीसदी बच्चों का नाम स्कूल में कभी भी दर्ज नहीं किया गया। जबकि नाम दर्ज करने के लिए कितने ही अभियान हुए और उस क्षेत्र में और राज्य में शिक्षा की योजनाओं का बहुत व्यापक प्रचार किया गया है। इतने ज्यादा बच्चे स्कूल से बाहर रहे इससे

पता चलता है कि इस इलाके में शिक्षा से वंचित रहने की समस्या मौजूद है। अकसर कहा जाता है कि स्कूल से इस प्रकार वंचित रहने का कारण गरीबी या शिक्षा के बारे में जागरूकता की कमी है, पर हमारे अध्ययन से पता चलता है कि स्कूल में नाम दर्ज न होने के नीचे लिखे कारण हैं–

शिक्षा से वंचित और लुप्त होने की प्रकिया

वे बच्चे जिनका नाम कभी नहीं दर्ज हुआ

स्कूल में बच्चों के दर्ज न होने की बात अनसूचित जनजाति परिवारों में सबसे ज्यादा हैं और एकमात्र महत्वपूर्ण कारण यह है कि इनं परिवारों को यह पता नहीं है कि बच्चे का नाम कैसे लिखवाएं और स्कूल में उन्हें कैसे भेजें। कई वयस्क, खासकर बहुजातीय अैर आदिवासी गांवों के भील और भिलाला परिवारों ने बताया कि बच्चों को स्कूल न भेजने का कारण यह है कि "हम कभी स्कूल नहीं गए और हम यह नहीं जानते कि ऐसा कैसे करें। एक बार शिक्षक आए थे और बच्चों का नाम लिखकर ले गए पर उसके बाद वे दोबारा नहीं आए। हम उनके संदेश की राह देखते रहे कि हमें कब और कैसे अपने बच्चों को स्कूल भेजना है। पर अब हम सुन रहे हैं कि स्कूल शुरू हुए तो कई माह बीत गए हैं और हमारे बच्चे स्कूल नहीं गए।" वे पीड़ा और नाराजी से यह भी कहते हैं शिक्षक अनके बच्चों के प्रति उदासीन हैं और बच्चे स्कूल के बाहर रह जाते हैं। शिक्षक और जिला शिक्षा समिति के सर्दस्य और पंचायत खुद होकर स्कूल के बारे में जानकारी फैलाने की फिक्र नहीं करते। रोजमर्रा की अपनी मेहनतकश जिन्दगी में डूबे कई आदिवासी मातापिता यह नहीं जानते कि स्कूल में बच्चों को भरती कैसे करते हैं। स्कूल से संबंधित मामलों की जानकारी की ऐसी कमी और डर की भावना के कारण नीची जातियों और आदिवासी समूहों के लिए अपने बच्चों को स्कूल भेजना कठिन हो जाता है।

इसके अलावा कई लोगों का ख्याल है कि पढ़ाई का माध्यम आदिवासियो की अपनी भाषा में न होकर हिन्दी होने के कारण उन्हें कठिनाई होती है। ऐसा ख्याल है कि शायद इस कारण ये लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते। पर भाषा को समस्या के रूप में नहीं बताया गया और कई मातापिता का ख्याल था कि शिक्षा का मतलब था हिन्दी पढ़ना और हिन्दी में पढ़ना।

स्कूल छोड़ने वाले बच्चे जिन कारणों से बच्चे स्कूल से हट जाते हैं वह उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि वे कारण जिनके चलते वे स्कूल से वंचित रहते हैं। तीन गांवों के आंकड़े बताते हैं कि स्कूल के बाहर के बच्चों में से 42 फीसदी बच्चे वे हैं जो स्कूल छोड़ चुके हैं। स्कूलों से हटने का यह रूप स्कूल के कामकाज का आइना है और 38 फीसदी बच्चों ने बताया कि स्कूल छोड़ने का कारण यह है कि स्कूल उबाऊ होते हैं। स्कूलों को बच्चों के लिए उबाऊ बनाने में अनियमित कक्षाओं, स्कूल का अकसर बन्द रहना, और पढ़ाने के घटिया तरीकों ने योग दिया है। एक गंभीर तथ्य यह भी है कि 25 फीसदी बच्चों ने शिक्षक के दुर्व्यवहार को स्कूल छोड़ने का कारण बताया।

ये सभी बातें मिलकर यह बात पुख्ता करती हैं कि सबसे ज्यादा हाशिये के समूह, यहां आदिवासी, स्कूल की प्रणाली से अलग रहते हैं और हट जाते हैं। पांच साल (1995–1999) का दाखिले के और स्कूल छोड़ने के आंकड़े तीन गांवों के स्कूलों में नीचे लिखा रवैया जाहिर करते हैं– कामलीपुर में 1995 में कक्षा 1 में दर्ज 10 बच्चों में से 1999 में पांचवीं कक्षा में सिर्फ 5 बच्चे थे। बडियाली में सिर्फ 8 बच्चे कक्षा 5 में पहुंचे थे जबकि 16 बच्चे दर्ज हुए थे। दर्जसंख्या, हाजिरी और स्कूल में बने रहने के स्तर आदिवासी बच्चों की तुलना में अनुसूचित जाति के बच्चों में ऊंचा था। कामलीपुर और बडियाली दोनों में पिछले सालों में दर्जसंख्या में लगातार बढ़ोतरी हुई थी और मोतीपुर गांव में भी दर्जसंख्या स्थिर थी। औसतन अनुसूचित जाति के बच्चे 30 से 40 फीसदी बने रहे। हाल में अनुसूचित जाति के बच्चों की दर्ज संख्या और हाजिरी में जो बढ़ोतरी हुई है उसका कारण यह हो सकता है कि

आदिवासियों की तुलना में अनुसूचित जाति के मातापिता मानते हैं कि शिक्षा उनकी मौजूदा हालत से निकलने का एक रास्ता है। नौकरी में आरक्षण से कुछ वयस्कों को नौकरी मिलने से भी स्थिति अनुकूल हुई है और इससे अनुसूचित जाति के बच्चों को शिक्षा पाने के लिए प्रोत्साहित किया, चाहे इसके लिए उन्हें कितनी ही आर्थिक और सामाजिक कठिनाईयां क्यों न उठाना पड़ी हों। इसका फल यह हुआ कि तीनों गांवों में अनुसूचित जाति के परिवारों के बच्चों की दर्जसंख्या अनुसूचित जनजाति के परिवारों के बच्चों की दर्जसंख्या से ज्यादा रही है, जबकि अनुसूचित जाति के लोग गांव में कम तादाद में थे।

लिंग और स्कूल जाना : हालांकि लड़कियों की दर्जसंख्या और उनकी हाजिरी की दरों में बहुत सुधार हुआ है, पर लड़कियां लड़कों से कहीं ज्यादा तादाद में स्कूल से बाहर हैं। हमारे शोध सर्वेक्षण में स्कूल से बाहर रहने वाले बच्चों में से 58 फीसदी बच्चे 6 साल और 11 साल के बीच की उम्र की लड़कियां थीं। लड़कों की तुलना में स्कूल में दाखिला न लेने और स्कूल छोड़ने वाली लड़कियों की तादाद ज्यादा थी। लड़कियों द्वारा स्कूल छोड़ने की बात इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि इससे यह संकेत मिलता है कि स्कूल छोड़ने की बात लिंग किस सीमा तक आधारित है। ज्यादा साफ तौर से कहें तो जबकि कम लड़कियां स्कूल छोड़ना चाहती हैं, ज्यादातर लड़कियों को मातापिता किसी न किसी कारण से स्कूल छुड़ा देते हैं। ये कारण जानेमाने हैं: शिशुओं की देखभाल, घर का कामकाज करना और परिवार की सआर्थिक गतिविधि में भाग लेना। जबकि कूछ मातापिता धन की समस्या का जिर्क करते हैं, वे यह भी मानते हैं कि घर चलाने में और घर की आर्थिक गतिविधियों में लड़की का सहयोग अपरिहार्य है।

आदिवासी लड़कियों की जिम्मेदारियां खास तौर से ज्यादा ही होती हैं। इसका पता आदिवासी लड़कियों का स्कूल छुड़ाने की ऊंची दर से चलता है। उदाहरण के लिए कामलीपुर में 1995 और 1999 के बीच एक भी

आदिवासी लड़की कक्षा 5 तक नहीं पहुंची। ज्यादातर आदिवासी लड़कियां कक्षा 3 तक ही पहुंच पाती हैं।

स्कूल से बाहर रहने वाले बच्चों का जीवन

इस सचाई के बावजूद कि काफी बच्चे स्कूल से बाहर हैं, कई बच्चे किसी औपचारिक नौकरी में नहीं थे। तीनों गांवों को मिलाकर 23 फीसदी बच्चे किसी न किसी प्रकार की मजदूरी कर रहे थे, जैसे खेत मजदूरी, ढोर चराना या घरू काम। इनमें से कई बच्चे , खासकर आदिवासी परिवारों के बच्चे, भूमिपतियों के ढोर चराने के काम से बंधे थे। हाली परकिया के नाम से जाने जाने वाले ये बच्चे , जिनमें ज्यादातर लड़के थे, मवेशियां या बकरियां चराने का काम या पशुशाला की सफाई का काम करते थे। उनकी मजदूरी उनके मातापिता को सालाना या दो माह में दी जाती थी। इन बच्चों की मजदूरी का इस्तेमाल घर की आय के पूरक के रूप में किया जाता था और कुछ लोग इस मजदूरी से परिवार का कर्ज चुकाते थे।

बदियाली गांव के हाली परकिया यानी बंधुआ चरवाहा दिनेश के जीवन का एक दिन

दिनेश कोरकू है और उसने कक्षा 2 में स्कूल छोड़ दिया था। 6 भाईयों में वह सबसे बड़ा है और अब वह एक लोहार परिवार में हाली परकिया (बंधुआ बच्चा मजदूर) है। इसी परिवार में उसके मातपिता भी खेती के बंधुआ मजदूर हैं। उसकी दिनचर्या इस प्रकार है :

- उठकर 8 बजे सुबह अपने मालिक के घर जाना
- मवेशियों को चराने के लिए जंगल ले जाना
- पेड़ पर चढ़ना, फिल्मी गीत गाना, दूसरे चरवाहों के साथ तैरना और खेलना
- शाम को मवेशियों के साथ लौटना और उन्हें मालिक की पशुशाला में रखना
- करीब 7 बजे शाम को घर लौटना
- शिशुओं के साथ खेलना, रात का खाना खाना और 9 बजे सो जाना

बच्चे और मजदूरी

ज्यादातर बच्चे याने स्कूल के बाहर के बच्चों में से 42 फीसदी बच्चे, घर पर और परिवार के लिए काम करते थे। वे कई किस्म के काम करते थे। जैसे, शिशुओं को सम्हालना, पानी, ईंधन और गोबर एकत्र करना, अनाज की सफाई करना, मवेशियां चराना, घर में झाड़ू लगाना और सफाई करना और अपने खेत में मातापिता की सहायता करना। आदिवासी बच्चे भी समूह या अपने मातापिता के साथ जाकर तेंदू पत्ता एकत्र करते थे और इस तरहस घर के लिए कुछ कमाई कर लेते थे। लड़कियां घर के कामकाज में कई घण्टे लगाती थीं। कुछ तो रोजाना आठ धण्टे यह काम करती थीं।

पर काफी बच्चे याने करीब स्कूल के बाहर के बच्चों का 34 फीसदी हिस्सा न तो कोई मजदूरी करते थे और न वे घर या परिवार के काम में लगे थे। ऐसे बच्चे अपना वक्त घूमने, मित्रों और बच्चों के साथ खेलने में बिताते थे। इन बच्चों को देखने से पता चलता है कि स्कूल का समुदाय से कोई संबंध नहीं था और बच्चों के लिए स्कूल जाना आकर्षक नहीं बनाया गया था। कई बच्चों ने बताया कि वे स्कूल जाना पसन्द करते पर या तो उनका नाम ही नहीं दर्ज किया गया या फिर उन्होंने पहले दो साल में ही स्कूल छोड़ दिया।

निष्कर्ष

इस इलाके में शिक्षा संस्थाओं की संख्या न बढ़ने के लिए ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तत्व जिम्मेदार हैं। पर हालांकि अब लोगों में शिक्षा की मांग है, रास्ते में संस्थागत और एजेन्सी की बाधाएं हैं। एक ओर तो, शिक्षा प्रणाली लोगों की जरूरतों के प्रति बहुत कुछ संवेदनहीन है और लोगों के प्रति जवाबदेह नहीं है। दूसरी ओर, लोग चूंकि लगातार आर्थिक और राजनीतिक रूप सेस हाशिये पर हैं इसलिए वे शिक्षा प्रणाली से जुड़ नहीं पाते और वे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। फल यह होता है कि जो

समुदाय गरीब हैं और हाशिये पर हैं उन्हें एक ऐसी शिक्षा प्रणाली हासिल होती है जो काम ही नहीं करती। अब जरूरत यह है कि 'जनाधारित' कार्यक्रम शुरू किये जाएं जो इस तरह काम करें कि जिससे लोग–वे लोग भी जो सबसे ज्यादा हाशिये पर हैं–प्रारंभिक शिक्षा के अपने अधिकार को महसूस कर सकें। ऐसा कार्यक्रम लागू करने के लिए दोनों स्तरों से पहल होना चाहिए : लोगों को शिक्षा से संबंधित ढांचों और प्रकियाओं में तथा स्कूल के चलने से जुड़ना होगा और उसमें योगदान देना होगा। यह भी जरूरी हैं कि शिक्षकों, प्रशासकों और सहयोगी कार्यकर्ताओं की प्रणाली को चाहिए कि वह यह माने कि विकास और प्रजातंत्र दोनों में प्रारंभिक शिक्षा अत्यन्त बुनियादी तत्व है और यह कोशिश करे कि वह लोकोन्मुखी बने।

सुझाव

एक. प्राथमिक शिक्षा में राज्य की भूमिका बढ़ाना

स्कूल समुदाय या समाज में एक केन्द्रीय संस्था के रूप में स्थापित हों और वे स्थिरता और प्रभावी ढंग से काम कर सकें, इसके लिए राज्य, समाज और शिक्षकों की कोशिशों को एकजुट करना होगा। स्कूल और स्कूल जाना राज्य की या समाज की ही जिम्मेदारी नहीं समझना चाहिए। सबके लिए प्राथमिक शिक्षा की तरफ एक समझी बूझी समझ में दोनों को शामिल होना चाहिए। न सिर्फ राज्य को स्कूलों के लिए ज्यादा धन देना चाहिए बल्कि उसे स्कूलों के प्रशासन की तरफ ज्यादा ध्यान देना चाहिए। राज्य के सलिए यहसय बाध्यकारी है कि वह शिक्षा, खासकर प्रारंभिक शिक्षा को ऐसी नींव के चस में सदेखे जिस पर ज्यादा विस्तृत और सटिकाऊ विकास आधारित होता है। राज्य के लिए यह जरूरी है कि वह प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रमुख भूमिका अदा करे और ऐसा न समझे कि बाजार सबको प्राथमिक शिक्षा मुहय्या कराने का एक उपयुक्त विकल्प पेश कर सकता है।

दो. स्कूल के प्रशासन के विकेन्द्रीकृत ढांचे को मजबूत बनाना

विकेन्द्रीकृत ढांचे की सख्त जरूरत है जैसे कि पंचायत और ग्राम शिक्षा समितियों को प्राथमिक शिक्षा के मुद्दों के बारेस में सकिय होनाा चाहिए। ऐसे ढांचों के लिए सभी सदस्यों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और उसमें उन्हें यह बताया जाना चाहिए कि उन्हें बैठक बुलाने का अधिकार है और इसके लिए उन्हें प्रधानाध्यापक या प्रधानाध्यापिका के लिए रुकने की जरूरत नहीं है। उन्हें यह भी बताया जाना चाहिए कि उन्हें कागजातों की समीक्षा करने, शिक्षकों को जवाबदेह ठहराने आदि का भी अधिकार है। सदस्यों को इस बात के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि वे अपनी भूमिका प्रभावी ढंग से अदा कर सकें और स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र

दिवस के कार्यक्रम आयोजित करने तक ही वे सीमित न रहें। सदस्यों को यह भी बताया जाना चाहिए कि उन्हें स्कूल की कक्षाओं, चहारदीवारी, शौचालय, पानी आदि बातों की जांच करने और उनके रखरखाव का भी अधिकार है। इसके अलावा सदस्यों के दिमाग में यह बात जोरों से भरी जानी चाहिए कि सभी सदस्यों और समुदाय को स्कूल के विकास में योगदान देना चाहिए। सदस्यों को बच्चों के अधिकारों और समुदाय के आर्थिक–सामाजिक और सांस्कृतिक रिवाजों –जैसे बालश्रम और बाल विवाह– से भी परिचित कराना चाहिए जो बच्चों को स्कूल से बाहर रख सकते हैं। इसके अलावा सदस्य और शिक्षकों को इस बात के लिए भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि वे स्कूल के काम की चीजों जैसे पाठ्यपुस्तकों, अनाज और शैक्षिक सामग्री के प्रदाय से संबंधित मुद्दों के बारे में शिकायत कर सकें और उसका फालोअप कर सकें। ऐसे प्रशिक्षण में उन्हें उन कारगर तरीकों के बारे में भी बताया जाना चाहिए जिसका उपयोग दूसरे स्कूलों या इलाकों ने स्कूल छोड़ने की समस्या की रोकने के लिए और उस समस्या के व्यावहारिक तथा संभव हल के लिए किया है।

तीन. स्कूल–समुदाय कैलेण्डर

चूंकि समुदायों की पारिस्थितिकीय, खेती संबंधी, काम और त्यौहारों की गतिविधियां स्कूल के कार्यक्रम से टकराती हैं इसलिए हर इलाके का ऐसा स्कूल शेड्यूल होना चाहिए जो समुदाय के शेड्यूल से मेल खाता हो। बच्चों को समुदाय के काम और गतिविधियों में भागीदारी करने देना चाहिए क्योंकि ऐसी गतिविधियों से बच्चों को स्थानीय ज्ञान पाने में सहायता मिलती हैं। हर समुदाय के अनुकूल केलेण्डर विकसित करने के लिए ब्लाक स्तर पर लचीला होने का अधिकार दिया जा सकता है और सब्लाक या जिला के अनुकूल केलेण्डर बनाया जा सकता है जिसमें स्कूल के न्यूनतम और अधिकतम दिन तय किये जा सकते हैं। समुदाय पर आधारित ऐसा शेड्यूल होने से न केवल स्कूलों में गैरहाजिरी कम होगी बल्कि इससे स्कूल और समुदाय के बीच ज्ञान और काम की जो खाई है वह भी कम होगी।

चार. शिक्षकों के प्रशिक्षण को नया रूप देना

शिक्षकों के प्रशिक्षण और भरती नीतियों को नया रूप देने की तत्काल जरूरत है। स्कूल को एक आकर्षक जगह बनाने के लिए किये जाने वाले उपाय और कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए कि जिससे शिक्षकों को शिक्षा प्रणाली में सक्रिय घटक बनाया जा सके। शिक्षकों को इस बात के प्रति चैतन्य बनाया जाना चाहिए कि उन्हें बच्चों और उनके मातापिता की सांस्कृतिक प्रष्ठभूमि की बेहतर समझ बनाने की जरूरत है। शिक्षक एक ओर तो अशिक्षित मातापिता की सांस्कृतिक समस्याओं के प्रति संवेदनहीन होते हैं और दूसरी ओर वे बाल विवाह अस्पृश्यता, बंधुआ मजदूरी आदि रिवाजों के प्रति सहनशीलता जताते हैं जबकि ये रिवाज बच्चों के शैक्षिक अवसरों पर असर डालते हैं। प्रशिक्षण और नीतियां ऐसी होना चाहिए कि वे शिक्षकों के विरोधाभासपूर्ण रवैयो को बदलें। मातापिता की संस्कृति और व्यक्तित्व के प्रति संवेदनशील और सहनशील होने के महत्व को शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। साथ ही, प्रशिक्षण में शिक्षकों को यह भी बताया जाना चाहिए कि यह महत्वपूर्ण हैं कि वे बालविवाह, लिंगभेद जैसे सांस्कृतिक तत्वों को और स्कूल के प्रति माताविता की उपेक्षा को ठीक और माफ करने योग्य न मानें और न उन्हें ऐसे व्यक्तिगत तत्व मानें कि जिनके बारे में वे कुछ कर नहीं सकते।

शिक्षक–छात्र रिश्तों में कई के नए शिक्षा सिद्धान्त और उन्मुखीकरण लागू किये जाने चाहिए। कुछ मान्यताओं पर विचार किये जाने की जरूरत है–जैसे शिक्षक का दर्जा श्रेष्ठ है और छात्रों का नीचा है, बच्चों को काबू में रखने की जरूरत है और शारीरिक दण्ड दिया जाना चाहिए। भरती के नियम ऐसे बनाए जा सकते हैं कि जससे समुदाय के प्रति शिक्षकों की जवाबदेही बढ़े और यह सुनिश्चित कियह जाए कि समुदाय में ऐसे शिक्षक नियुक्त हों जिस पर समुदाय को भरोसा हो और जिसके प्रति उनका सम्मान हो। कुछ स्थानीय लोगों ने सुझाया कि शिक्षा विभाग प्रोबेशनरी शिक्षकों को एक साल के लिए समुदाय के पास भेज सकता है। उस शिक्षक की नियुक्ति समुदाय

के स्कूल में नियमित और नियमानुकूल तभी जाएगी जब साल के अन्त में समुदाय के स्कूल की समिति उस व्यक्ति के पक्ष में मत देगी।

पांच. स्थानीय ज्ञान और पाठ्यक्रम का विकास

पाठ्यक्रम ऐसा बने कि उसमें स्थानीय ज्ञान को लेकर चलने की और उस ज्ञान को फैलाने में मातापिता और बच्चों की ज्यादा भागीदारी की व्यवस्था होना चाहिए। स्थानीय ज्ञान में कई मातापिता दक्ष होते हैं जैसे वानिकी, कृषि, लोक औषधि, कारीगरी आदि। उन्हें समय समय पर शिक्षक के रूप में बुलाया जा सकता है और लोगों के काम और जीवन प्रणाली को पाठ्यक्रम में शामिल किया जा सकता है।

छः स्कूलों के निरीक्षण और समीक्षा में सुधार

शिक्षा विभाग को ज्यादा सक्रिय और सतर्क भूमिका अदा करने की जरूरत है। निजी और स्वैच्छिक संस्थाओं के स्कूलों का निरीक्षण नियमित रूप से नहीं किया जाता। शिक्षा विभाग को स्कूल के बुनियादी ढांचे का, शिक्षकों की हाजिरी तथा गतिविधियों का, रजिस्टरों के और कागजातों के रखरखाव का और स्कूल के सामान्य कामकाज का नियमित रूप से निरीक्षण करना चाहिए। इसके अलावा, विभाग को पढ़ाने–सीखने के तरीकों, नए पाठ्यक्रम के उपयोग, बच्चों से व्यवहार के बारे में सभी सरकारी और निजी स्कूलों का मार्गदर्शन करना चाहिए और समुदाय–स्कूल के परस्पर संवाद को प्रोत्साहित करना चाहिए।

शिक्षा विभाग को ऐसी तरीका विकसित करना चाहिए कि जिससे स्थानीय निर्वाचित प्रतिनिधि यह देख सकें कि स्कूलों को दी जाने वाली समग्री स्कूलों तक पहुंचे।

विशेष तौर पर, सामान्य प्रशासन के संदर्भ में, जिसमें स्थानीय निर्वाचित संस्थाएं भी शामिल हैं, प्रशासन को स्कूलों के कामकाज से लगातार जुड़ा

रहना चाहिए और स्कूलों की हालतके बारे में तटस्थ नजरिया नहीं अपनाना चाहिए।

सात. बच्चों का संकट कोष

कई बच्चे तब स्कूल से हटा लिये जाते हैं जब मातापिता, खासकर पिता, की मृत्यु हों जाती हैं या जब परिवार पर कोई संकट आ जाता है। ऐसी स्थिति में ऐसे बच्चों को पैसों की और चीजों की सहायता दी जाना चाहिए जिससे स्कूल में उनकी हाजिरी सुनिश्चित हो सके। बच्चों का एक संकट कोष उपलब्ध सयहोना चाहिए जिसको सभी ग्राम पंचायत सदस्य, शिक्षा समिति के सदस्य और शिक्षक आवेदन कर सकते हों

आठ. स्कूलों के लिए ब्लाक पुरस्कार

स्कूलों में स्तर और गुणवत्ता बनाए रखने के लिए एक रास्ता यह है कि वार्ड/जोन स्तरस पर स्कूलों को पुरस्कार दिये जाएं। स्कूलों का मूल्यांकन उनकी उपस्थिति के स्तर, बुनियादी ढांचे के रखरखाव, शिक्षकों के काम और बच्चों की उपलब्धि के स्तर के आधार पर किया जा सकता है। इन पुरस्कारों के समाचारों का प्रचार किया जा सकता है और इससे स्कूलों में गुणवत्ता और स्तर स्थापित करने के लिए एक तरीका विकसित हो सकता है।

नौ. विकेन्द्रीकृत आंकड़े एकत्र करना

स्कूलों के बारे में आंकड़े और जानकारी, जैसे पहुंच, कामकाज, बुनियादी ढांचे की जरूरतें और स्कूल छोड़ने वाले बच्चों का मसला, को विकेन्द्रीकृत स्तर पर एकत्र किया जा सकता है, जैसे ब्लाक स्तर पर। इन तरीकों से संसाधनों के आवण्टन, जरूरतमंद और अत्यधिक वंचित क्षेत्रों के निरीक्षण और सहायता की प्राथमिकताएं तय की जा सकती हैं। कम दर्ज संख्या और कम उपस्थिति के आंकड़ों में स्कूल की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि और स्कूल के ठीक काम न करने के कारणों आदि का जिक भी होना चाहिए। छमाही समीक्षा के जरिये आकड़ों को प्रधानाध्यापकों/प्रधानाध्यिकाओं से

और विकेन्द्रीकृत प्रशासकीय ढांचे से मिली जानकारी के आधार पर आद्यतन बनाया जा सकता है। ऐसे आंकड़े स्कूल और स्थानीय स्तर पर भी उपलब्ध होना चाहिए।